"बहरों को सुनाने के लिए धमाकों की ज़रूरत होती है"

सत्यवीर सिंह

सोमवार, दिनांक 8 अप्रैल, 1929 को 12 बजकर 30 मिनट पर, दिल्ली की केन्द्रीय विधान सभा (Central Legislative Assembly, Delhi) के स्पीकर, विट्ठल भाई पटेल, जैसे ही 'ट्रेड यूनियन बिल (Trade Dispute Bill)' पर अपना फ़ैसला सुनाने उठे, सभागार, दो बमों के ज़बरदस्त धमाके से दहल गया। हर तरफ़ बारूद की गंध और धुआं छा गया। सभी सदस्य सन्न रह गए। तब ही; 'इंक़लाब ज़िंदाबाद', 'साम्राज्यवाद मुर्दाबाद', 'दुनिया के मज़दूरो एक हो' के गगनभेदी नारों से, सभागार गूंज उठा। सबकी नज़र दर्शक दीर्घा की ओर खिंची चली गई, दो नवयुवक जो, बेख़ौफ़ नारे लगा रहे, पर्चे भी गिरा रहे थे। मोतीलाल नेहरू, मोहम्मद अली जिन्ना, सरदार बल्लभ भाई पटेल, मदन मोहन मालवीय; तो उस वक़्त मौजूद थे ही उनके साथ, लेकिन एक और 'खास' व्यक्ति मौजूद था, अंगरेज़ लुटेरों का सेवक, वही कुख्यात, जॉन साइमन, जो देश के मज़दूरों, मेहनतकशों, आज़ादी आंदोलन के लड़ाकों की आवाज़ का गला घोंटने वाले 'साइमन कमीशन' का मुखिया था। माननीय सभासद पहचान गए, वे बहादुर नवयुवक थे; 'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना (HSRA)' के जांबाज़ सिपाही, शहीद-ए-आज़म भगतसिंह और अमर क्रांतिवीर बटुकेश्वर दत्त।

दर्शक दीर्घा में खड़े, उन जांबाज़ युवकों ने भागने, छुपने, अपनी पहचान छुपाने की कोई कोशिश नहीं की। यहां तक कि, जब सुरक्षा अधिकारी उन्हें गिरफ्तार कर रहे थे, उन वीर युवकों ने, उन्हें भी कोई असुविधा पैदा नहीं की। बस लगातार पूरी ताक़त से नारे लगाते रहे, 'इंक़लाब जिंदाबाद', 'अंग्रेज़ साम्राज्यवाद मुर्दाबाद', 'दुनिया के मज़दूरों एक हो'। साथ ही एक और नारा सुनाई पड़ा; 'बहरों को सुनाने के लिए धमाकों की ज़रूरत होती है'। दोनों बम, सोच समझकर, स्पीकर के आसन के आगे ख़ाली जगह में इस तरह गिराए गए थे कि सभागार में मौजूद कोई भी व्यक्ति, मरना तो छोडिए, ज़ख्मी भी नहीं हुआ। पुलिस ने जिन लोगों को ज़ख्मी बताया था, वे, दरअसल, धमाकों की दहशत से मानसिक तौर पर 'ज़ख्मी' थे। सभागार में फेंके गए पर्चों का मज़मून इस तरह था...

'हिंदुस्तान समाजवादी प्रजातान्त्रिक सेना' नोटिस

"बहरों को सुनाने के लिए बहुत ऊँची आवाज की आवश्यकता होती है," प्रसिद्ध फ्रांसीसी अराजकतावादी शहीद वैलियाँ के यह अमर शब्द हमारे काम के औचित्य के साक्षी हैं। पिछले दस वर्षों में ब्रिटिश सरकार ने शासन-सुधार के नाम पर इस देश का जो अपमान किया है, उसकी कहानी दोहराने की आवश्यकता नहीं और न ही हिन्दुस्तानी पार्लियामेंट पुकारी जानेवाली, इस सभा ने भारतीय राष्ट्र के सिर पर पत्थर फेंककर उसका जो अपमान किया है, उसके उदाहरणों को याद दिलाने की आवश्यकता है। यह सब सर्वविदित और स्पष्ट है। आज फिर जब लोग 'साइमन कमीशन' से कुछ सुधारों के टुकड़ों की आशा में आँखें फैलाए हैं, और इन टुकड़ों के लोभ में आपस में झगड़ रहे हैं, विदेशी सरकार 'सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक' (पब्लिक सेफ्टी बिल) और 'औद्योगिक विवाद विधेयक' (ट्रेड्स डिस्प्यूट्स बिल) के रूप में अपने दमन को और भी कड़ा कर लेने का यत्न कर रही है। इसके साथ ही आने वाले अधिवेशन में 'अखबारों द्वारा राजद्रोह रोकने का कानून' (प्रेस सैडिशन एक्ट) जनता पर कसने की भी धमकी दी जा रही है। सार्वजनिक काम करने वाले मजदूर नेताओं की अन्धाधुन्ध गिरफ्तारियाँ, यह स्पष्ट कर देती हैं कि सरकार किस रवैये पर चल रही है।

भगत सिंह

बटुकेश्वर दत्त

राष्ट्रीय दमन और अपमान की इस उत्तेजनापूर्ण परिस्थिति में अपने उत्तरदायित्व की गम्भीरता को महसूस कर 'हिन्दुस्तान समाजवादी प्रजातन्त्र संघ' ने अपनी सेना को यह कदम उठाने की आज्ञा दी है। इस कार्य का प्रयोजन है कि कानून का यह अपमानजनक प्रहसन समाप्त कर दिया जाए। विदेशी शोषक नौकरशाही, जो चाहे करे परन्तु उसकी वैधानिकता का नकाब फाड़ देना आवश्यक है.

जनता के प्रतिनिधियों से हमारा आग्रह है कि वे इस पार्लियामेंट के पाखण्ड को छोड़ कर, अपने-अपने निर्वाचन क्षेत्रों को लौट जाएं और जनता को विदेशी दमन और शोषण के विरूद्ध क्रांति के लिए तैयार करें। हम विदेशी सरकार को यह बतला देना चाहते हैं कि हम 'सार्वजनिक सुरक्षा' और 'औद्योगिक विवाद' के दमनकारी कानूनों और लाला लाजपत राय की हत्या के विरोध में देश की जनता की ओर से यह कदम उठा रहे हैं।

हम मनुष्य के जीवन को पवित्र समझते हैं। हम ऐसे उज्ज्वल भविष्य में विश्वास रखते हैं जिसमें प्रत्येक व्यक्ति को पूर्ण शान्ति और स्वतन्त्रता का अवसर मिल सके। हम इन्सान का खून बहाने की अपनी विवशता पर दुखी हैं। परन्तु क्रांति द्वारा सबको समान स्वतन्त्रता देने और मनुष्य द्वारा मनुष्य के शोषण को समाप्त कर देने के लिए, क्रांति में कुछ-न-कुछ रक्तपात अनिवार्य है।

इन्कलाब जिंदाबाद!

ह. बलराज

कमांडर-इन-चीफ

भगत सिंह - बटुकेश्वर दत्त के बम के निशाने पर ये तीन काले विधेयक थे

सार्वजनिक सुरक्षा विधेयक (Public Safety Bill)

अँगरेज़ सरकार द्वारा 1929 में लाए गए, 'पब्लिक सेफ्टी बिल' का जो असल मक़सद था, वो उन्होंने स्पष्ट लिखा था, वे हमारे आज के शाषकों जितने काइयां नहीं थे। 'समाजवादियों और कम्युनिस्टों की गतिविधियों पर अंकुश लगाना, उन पर नज़र रखना (मतलब उनकी खुफियागिरी करना), भारत में पनप रहे कम्युनिस्ट संगठनों को, वैश्विक कम्युनिस्ट संगठनों और ब्रिटिश कम्युनिस्ट संगठनों से काटकर, उन्हें कमज़ोर करना'। विदित रहे, ब्रिटेन की कम्युनिस्ट पार्टी ने, ना सिर्फ़ भारत की आज़ादी की मांग की थी, वरन उसके सदस्य यहाँ, हमारे देश में आकर, आज़ादी आन्दोलन में शरीक़ भी होने लगे थे। मेरठ षडयंत्र केस में गिरफ्तार आन्दोलनकारियों में 2 अँगरेज़ भी शामिल थे। मोतीलाल नेहरू ने इस बिल को 'भारत की गुलामी का बिल न 1' क़रार दिया था और इसे, भारत के राष्ट्रीय आन्दोलन की अगुवाई कर रही, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की गतिविधियों को कुचलने के लिए लाया गया है, ये कहा था। उस वक़्त की कांग्रेस भी, राष्ट्रीय आज़ादी आन्दोलन में शरीक़ विभिन्न धाराओं का, एक मोर्चा ही हुआ करती थी, जिसमें कई वामपंथी संगठन/समूह भी कार्यरत थे। दरअसल, रूस की नवम्बर क्रांति के आलोक में, दुनियाभर के साम्राज्यवादी लुटेरे उस वक़्त खौफज़दा थे।

4 फरवरी, 1929 को इंग्लैंड की संसद में भारतीय मामलों के सचिव, कर्नल वेजवुड ने, भारत में तैनात उप- सचिव, एअर्न विंटरटन से पूछा था, "क्या आप 'कम्युनिस्टों का प्रत्यार्पण बिल (Communist Deportation Bill)', केन्द्रीय विधान सभा से पास कराने जा रहे हैं, अगर नहीं, तो क्यों? उप-सचिव का उत्तर- 'पहले सवाल का जवाब 'हाँ' है। इसे हमने 'पब्लिक सेफ्टी बिल' के नाम से पास कराया है, क्योंकि 'कम्युनिस्ट प्रत्यार्पण बिल' के नाम से पास कराने में दिक्क़त आ रही थी।' दूसरा सवाल, "क्या महान स्वामी (Noble Lord) वायसराय, इंडिया में राष्ट्रवाद के बरअक्स कम्युनिज्म से भयभीत हैं?" उप-सचिव- 'नहीं'. उस वक़्त चित्तगौंग में एक ज़बरदस्त विद्रोह चल रहा था, जिसने अंग्रेजों की नींद हराम की हुई थी।

औद्योगिक विवाद विधेयक, 1929 (Trade Dispute Bill, 1929)

पुनरावृत्ति की क़ीमत पर भी, कहा जाना चाहिए कि 1917 की रुसी क्रांति ने मज़दूरों की असली ताक़त क्या होती है, ये दुनिया को दिखा दिया था। शासक समझ गए थे कि 'समाजवादी क्रांति' सिर्फ़ किताबों में पढ़ने की बात नहीं है। मज़दूरों की सही क्रांतिकारी पार्टी बन जाए और लेनिन जैसा महान नेता मिल जाए, तो कितनी भी दमनकारी सत्ता की रेल, मज़दूर 'दस दिनों' में ही बना सकते हैं और उनकी सत्ता, 'पेरिस कम्यून' जैसे 72 दिनों में नहीं मिटेगी। यही वजह है कि अँगरेज़ हुकूमत चाहती थी कि मज़दूर हड़ताल ना कर पाएं। उसके लिए ज़रूरी है कि उन्हें संगठित ही न होने दिया जाए। इस क़ानून के अनुसार, मज़दूरों को हड़ताल करने से 15 दिन पहले, हड़ताल का नोटिस देना ज़रूरी बना दिया। साथ ही, सरकार को ये हक़ भी था कि वह किसी भी कारखाने को जन-उपयोग वाला कारखाना घोषित कर, उसमें तालाबंदी कर सकती थी। मज़दूरों की हड़ताल से घबराए अँगरेज़ चाहते थे कि जैसे ही मज़दूर हड़ताल का नोटिस दें, वे उस कारखाने में ही ताला लगवा दें।

इस क़ानून के बारे में, शहीद-ए-आज़म 'किरती' में लिखते हैं, "इंग्लिस्तान के रुढ़िवादी (conservative) गुट के लोग कब से इस बात की ताक में थे कि कैसे मज़दूरों की बढ़ती ताक़त को रोका जाए. उनको यह बात स्पष्ट नज़र आती थी कि यदि मज़दूरों की बढ़त को अभी न रोका गया तो मज़दूर देखते ही देखते, राज के मालिक बन जाएंगे और इस तरह उन्हें राज की बागडोर छोड़नी पड़ेगी। उन्हें यह स्पष्ट पता था कि नाम मात्र को लड़ रहा, नरम दल तो किसी काम का नहीं, और न ही अभी जल्दी उनके मज़बूत होने की उम्मीद है। इसलिए यदि उन्हें ख़तरा था तो मज़दूरों से ही था. इसलिए मज़दूरों की मुश्कें बांधना ही उन्होंने सबसे पहले ठीक समझा।"

प्रेस देशद्रोह क़ानून, 1922 (Press Sedition Act, 1922)

असेंबली में फेंके गए पर्चों में, जिन्हें शहीद-ए-आज़म ने लिखा था, जिन पर दस्तख़त, कमांडर-इन-चीफ की हैसियत से 'बलराज' मतलब चंद्रशेखर आज़ाद ने किए थे, जिस तीसरे काले क़ानून का ज़िक्र है, वह है, 1922 में लाया गया, प्रेस देशद्रोह क़ानून (Press Sedition Act, 1922)। कृपया याद रहे, बाल गंगाधर तिलक और महात्मा गाँधी को, इसी क़ानून के तहत गिरफ्तार किया गया था। दमनकारी सत्ता सच्चाई से बहुत डरती है; लोगों को उनके कारनामों की हक़ीक़त पता चल गई तो क्या होगा? कितनी भी आततायी सरकार, जन-सैलाब, जन-शक्ति का मुक़ाबला नहीं कर सकती। पत्रकारों को ख़रीदा जाए, उन्हें पालतू बनाया जाए या फ़िर उनमें दहशत गाफ़िल की जाए, जिससे वे, जो भी लिखें, साहिब-ए-मसनद से पूछ कर ही लिखें!! इस क़ानून का मक़सद जानना बिलकुल कठिन नहीं। असल पत्रकारों ने, लेकिन, हमेशा घुटने टेकने से मना किया है। बेबाक़ क़लम, गुलाम नहीं रहा करती। तिलक और गाँधी ने भी यही 'अपराध' किया जिसमें वे दोनों जेल गए और 6-6 महीने की सज़ा हुई।

मुक़दमे की सुनवाई के दौरान, बैरिस्टर महात्मा गाँधी ने कहा था, "ये क़ानून, भारतीय दंड संहिता का राजकुमार है जिसे नागरिकों के बोलने की आज़ादी को कुचलने के लिए लाया गया है". इस क़ानून की धारा 124 ए के तहत 'घृणा, दुर्भावना, वैमनस्य फैलाने' की परिभाषा को इतना व्यापक बनाया गया था कि सरकार की कैसी भी आलोचना करने वाले को, इसके तहत धरा जा सकता था, और जब तक सरकार चाहे, उसे जेल में रखा जा सकता था। जिन अंग्रेज़ों ने ये क़ानून बनाया था, उन्हें तो इस अमानवीय काले क़ानून को 2009 में रद्द करना पड़ा, लेकिन गोरे अंग्रेज़ों के वंशज, देसी भूरे अँगरेज़, जो गाँधी की समाधि पर मत्था टेकने के पाखंड को नियमित करते रहते हैं, इस क़ानून को और कड़ा बना दिया है। मोदी सरकार ने तो इस क़ानून का इतना इस्तेमाल किया है जितना 'पिछले 70 साल में नहीं हुआ'।

इन काले कानूनों के शिकार, आज़ादी आंदोलन में कांग्रेसी ही ज्यादा हुए, लेकिन जैसे ही 1947 में सत्ता उन्हें मिली, प्रतिरोध का गला घोंटने के मक़सद से, उन्होंने उनसे भी भयानक काले कानून बनाने में कोई कमी नहीं की। कड़वी हक़ीक़त ये है कि ये सत्ता, लोगों को आज़ादी देकर, चल ही नहीं सकती। सबसे पहला, सबसे भयानक, स्याह काला क़ानून है; आर्म्ड फोर्सेज स्पेशल पावर्स एक्ट (AFSPA), जो जवाहरलाल नेहरू द्वारा 11 सितम्बर 1958 को लाया गया। उत्तर-पूर्व राज्यों और कश्मीर में ये क़ानून आज भी लागू है। आम लोगों पर जाने कितने ज़ुल्म, इस क़ानून की आड़ में ढाए जा चुके हैं। इरोम शर्मीला ने, इस क़ानून को रद्द कराने के लिए 16 साल से भी अधिक समय तक शांतिपूर्ण विरोध-आन्दोलन किया, जो एक विश्व रिकॉर्ड है, लेकिन सत्ता का दिल नहीं पसीजा। इतनी भूखी है ये राजसत्ता, इन काले क़ानूनों की और लोगों को कुचलने की!! ये है, हमारी 'मदर ऑफ़ डेमोक्रेसी' का असल चेहरा।

इंदिरा गाँधी, 'मीसा' (Maintenance of Internal Security Act) लाई और सारे विरोधियों को रातोंरात जेल में डाल दिया। उस वक़्त भी, रेडियो पर दिन भर, 'ये सब देश हित में हो रहा है', बकवास परोसी जाती थी। अस्सी के दशक में घोर दमनकारी 'टाडा' (Terrorist And Disruptive Activities Prevention Act) को कांग्रेस ही लाई। 'आतंकवादी' कौन है? जिसे सरकार या उसकी पुलिस-फ़ौज कहे!! उसके बाद, किसी भी विरोध में आवाज़ उठाने वाले को 'आतंकवादी' कहने का सिलसिला शुरू हुआ जिससे उसे कितने भी दिन जेल में सड़ाया जा सके। लोगों को 'समझाना' आसान हो गया; आतंकवादी है तो उसके कैसे मानवाधिकार!! आजकल चिदंबरम बहुत रसीली बातें करते हैं, मनभावन लेख लिखते हैं, क्योंकि सत्ता में बैठे फ़ासिस्ट टोले ने उन्हें भी जेल की हवा खिला दी, लेकिन 'टाडा' के बचाव में संसद में दिए गए, उनके भाषण को कोई सुने!! दरअसल, भले लोग इस हकीक़त को समझने में कितनी भी देर लगाएं, चाहें कभी तक झांसे में आते रहें, लेकिन ये सच्चाई नहीं बदल सकती कि मौजूदा सत्ता, जो 1 प्रतिशत के हित में, 99 प्रतिशत को कुचल रही है, लोगों पर दमन और हिंसा का क्रूर चक्र चलाए बगैर एक दिन भी नहीं चल सकती। मेहनतकश अवाम इस क़दर तिलमिलाया हुआ है कि इसे दो दिन में रौंद डालेगा।

यूएपीए (Unlawful Activities Prevention Act), ने तो दमन, अन्याय का अलग ही काला इतिहास लिखा है। मोदी सरकार, इतिहास में अब तक की सबसे घोर जन-विरोधी सरकार है। इन्होने वाक़ई दमन और अन्याय की उस हद को छू लिया 'जो 70 सालों में नहीं हुआ'। यूएपीए का इतिहास 'आज़ाद' भारत की सत्ता के चरित्र को नंगा कर डालता है। 'सरकार चाहे तो लोगों के संवैधानिक, जनवादी अधिकारों को प्रतिबंधित कर सकती है', संविधान में ये संशोधन 1963 में आया था। इस काले क़ानून की जड़ यहीं है। उसके बाद, 1969, 1972, 1986, 2004, 2008, 2012, 2019 के संशोधनों द्वारा इसकी मारक क्षमता को बढाया गया है। 2019 के संशोधन के बाद, कोई ऐसा व्यक्ति नहीं, जो इसकी ज़द में नहीं। हज़ारों बेक़सूर, इसके तहत सालों से जेलों में सड़ रहे हैं। इसे भी जाने दीजिए, ई डी द्वारा ही सरकार किसी को भी जब तक चाहे जेल में बंद रख सकती है। ये है अमृत काल और ये है 'मदर ऑफ़ डेमोक्रेसी'!! दूसरी ओर, 44 श्रम कानूनों की जगह 4 लेबर कोड वाला क़ानून, 1929 वाले 'ट्रेड डिस्प्यूट बिल' से 100 गुना ज्यादा मज़दूर विरोधी है।

ये काले कानून, सत्ता को संकटों से उबारने और उनके आक्रोश से बचाने के लिए लाए जाते हैं। 1920 के दशक वाली मंदी, मतलब आर्थिक संकट, भयानक था जिसने हिटलर को जन्म दिया क्योंकि क्रांतिकारी शक्तियां बोल्शेविक क्रांति को देश-देश में फैलाने में नाकाम रहीं। व्यवस्था का मौजूदा संकट तो, एक दम जानलेवा है। भले सत्ता के ताबेदारों को लगता रहे कि लोगों की बोलती बंद कर वे अपना राज-पाट हमेशा चलाए रख सकते हैं लेकिन इतिहास हमें दूसरा ही सबक़ सिखाता है।